❀ श्रीहरिः ❀

श्रीगोपीगीतम्

[चतुःश्लोकिभागवतसहितम्]

टीकाकारः—

आचार्य श्रीराजनारायणशास्त्री शुक्ल महोदय

[अध्यक्ष—शास्त्रार्थमहाविद्यालय, मीरघाट, काशी]

धर्मार्थप्रकाशयित्री—
मण्डावा (जयपुर) निवासी स्व० प० रामकुमार
ब्याला महोदय की धर्मपत्नी
श्रीमती जानकीदेवी शर्मा (काशी)

मूल्य—भगवद्भक्ति

❀ श्रीः ❀

❀ श्रीगोपीगीतम् ❀

[चतुःश्लोकिभागवतसहितम् ।]

टीकाकारः—

सैकड़ों ग्रन्थों के कर्त्ता, काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान्,

न्याय-व्याकरणाद्यनेकशास्त्राचार्य, शास्त्रार्थ-

व्याख्यानवाचस्पति—

आचार्य श्रीराजनारायणशास्त्रीशुक्ल

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारससिटी ।

मूल्य-भगवद्भक्तिमात्र ।

प्रकाशकः—
जे० एन० यादव, प्रोप्राइटर,
मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

मुद्रकः—
मास्टर प्रिंटिंग वर्क्स,
बुलानाला, बनारस ।

भूमिका

श्रीमहामुनि वेदव्यास रचित समस्त ग्रन्थों में श्रीमद्भागवत महापुराण का स्थान सब से ऊँचा है इस बात को सभी स्वीकार करते हैं। अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक सच्चिदानन्दघन घनश्याम भगवान् राधारमण श्रीकृष्णचन्द्रजी जिस समय मृत्युलोक से अपने सभी कार्य समाप्त कर परमधाम पधारने लगे उस समय श्री उद्धव जी ने उन से कहा कि भगवन्! आप तो पधार रहे हैं लेकिन इस घोर कलिकाल में जब कि पृथ्वी पापों के भार से लद जायगी, दुष्ट दुराचारियों के दुराचारों से लोक त्रस्त हो जायगा, धर्माधर्म के विचार न रह जायँगे उस समय आप के भक्तों की रक्षा किस तरह होगी? भक्त किसको शरण जाएँगे? इत्यादि प्रश्नों पर उचित विचार कर श्री भगवान् ने अपने समस्त तेज को भागवत में रख स्वयम् श्रीमद्भागवत रूपी आनन्द समुद्र में छुप गए। अतः यह महापुराणरूपी शब्दमहोदधि श्रीभगवान् का प्रत्यक्ष शरीर है इसमें विवाद नहीं। जैसा कि—

स्वकीयं यद् भवेत् तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्त्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात् पाठाद् दर्शनात् पापनाशिनी॥

इत्यादि श्लोकों में स्पष्ट है। यद्यपि शास्त्रों में भगवत्प्राप्ति के सरलातिसरल मार्ग बतलाये गए हैं तथापि 'साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोऽयमीरितः' के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि कलियुग में भक्त जनों के लिए सबसे बड़ा साधन यही है। जिसने मनसा वाचा कर्मणा इस श्रीमद्भागवतरूपी महासाधन को अपनाया उसे संसारसमुद्र पार करना सहज हो गया। अन्यथा माया के प्रबल बन्धनों से मुक्ति कहाँ ? जैसा कि—

'अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा।
कथं त्याज्या भवेत् पुम्भिः' इत्यादि श्लोकों से स्पष्ट है।

दशम स्कन्ध में लीलाविग्रह श्री प्रभु ने माया के नाना रूपों को गोपिका के रूप में रख विविध लीलाओं द्वारा जगत् के प्राणियों के कल्याणार्थ सुन्दर उपदेश दिए हैं। विषयों से किस प्रकार विरक्त होना सम्भव है वस्तुतः इसीका दिग्दर्शन रासपञ्चाध्यायी से प्रतीत होता है। यद्यपि वर्त्तमान कुशिक्षा के दोषों से परिपूर्ण अदूरदर्शियों के कुतर्क कुछ का कुछ ही सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तथापि श्रवण मनन तथा निदिध्यासन की विधि से सद्गुरूपदिष्ट ज्ञान के अधिकारियों ने ही उसकी अगाधता का अनुभव किया है।

उस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डाधिष्ठान परमेश्वर की प्रत्येक क्रियायें उपदेशपूर्ण हैं। आप स्वयम् विचार करें कि जिस समय गोपियाँ अपने घरों को, परिवार को, पति को छोड़ २ कर श्रीभगवान् के पास आईं उस समय उन्होंने उनसे कहा कि गोपियो! तुम इस समय कहाँ आईं, कहो व्रज में सब आनन्द तो है ? अच्छा मेरा भी दर्शन कर लिया तथा इस कुमुदित वन को भी देख लिया अब अपने अपने घर जाओ, क्योंकि शास्त्रों में यह सनातन उपदेश है कि अपने पति की सेवा ही स्त्रियों के लिए परमधामदायक है, पति भलेही रोगी हो, मूर्ख हो, निर्धन अथवा दुःखद ही क्यों न हो। तुम्हारे पिता माता भ्राता श्वसुर आदि तुम्हें ढूँढते होंगे अतः शीघ्र ही घर वापस जाओ, विलम्ब करने का काम नहीं। रही बात मेरे दर्शन की सो भी हो ही गई इससे अधिक तुम लोगों को रोकना मैं नहीं चाहता। इस तरह श्री भगवान् की बातें सुन गोपीमण्डल बड़ा ही दुःखी हुआ। गोपियों ने कहा भगवन्! आप समस्त संसार के बन्धु, आपही

परमात्मा जगन्नियन्ता हैं। आप के श्री चरणों के दर्शन के लिए ही बड़े बड़े

संयमी तपस्वी यत्न करते हैं। अतः आप के समक्ष आने पर हम लोग पाप-भागिनी हों यह सम्भव नहीं। भगवन् ! हम लोगों के हाथ पैर मन वाणी शरीर सभी शिथिल हो गए हैं, आपके इस कठिन उत्तर ने हमें शक्तिहीन बना दिया है। कैसे घर जाऊँ खिसका भी तो नहीं जाता। भगवन् ! अब तो जो भी हो इन चरणों का ही दर्शन न छूटे यही चाहती हूँ। इस प्रकार अधिक स्तुतियों के बाद श्रीभगवान् प्रसन्न होकर गोपीमण्डल को साथ ले रास रचाने लगे। गोपियाँ भी भगवान् की कृपा देख अपने अहङ्कार में भूल गईं, लीलाधर श्री प्रभु उनके मानमर्दन के लिए ही कहीं अन्तर्धान हो गए। अब क्या था सबके अभिमान चूर हो गए। सभी विलाप करने लगीं। उसी समय भगवान् के यशोगान में प्रवृत्त गोपियों के भावों का सङ्कलन श्रीव्यासजी महाराज ने दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध ३१ वें अध्याय में किया। उसी का नाम गोपीगीत से प्रसिद्ध है। भक्त तथा भजनीय का तादात्म्य होना ही चाहिए। जैसा कि 'अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते' इससे व्यक्त है। उस समय सर्वेश को किसी भी रूप से भजन किया जाना उचित ही है। किसी प्रकार का भेद रखने से अनन्यता कैसे ? इस गोपीगीत में वस्तुतः ज्ञान की ही दृष्टि से प्रवेश करना चाहिए। भगवद्-भक्ता नारियों के लिए यह अत्यन्त पठनीय वस्तु है। इसके अध्ययन से, मनन से प्रभु की कृपा होगी अतः नियमतः पठनीय इस गोपीगीत का प्रकाशन अपेक्षित था। यद्यपि कई भगवत्प्रेमियों ने शास्त्री जी की विशद संस्कृत तथा हिन्दी भावार्थ सहित श्रीगोपीगीत धर्मार्थ कई बार प्रकाशित किया परन्तु थोड़ी संख्या में रहने के कारण उनसे विशेष लोकोपकार न हुआ। इसी बात को ध्यान में रख मण्डावा (जयपुर) निवासी स्वर्गीय पं० रामकुमार जी शर्मा महोदय की धर्मपत्नी परमभक्ता साधुचरिता **श्रीमती जानकी देवी शर्मा** (शम्भुधाम काशी) के विशेष आग्रह पर उन्हीं के व्यय से केवल मूलार्थ युक्त शास्त्री जी की आज्ञानुसार मैं इस अमूल्य संस्करण को प्रकाशित कर रहा हूँ। यदि इससे कुछ भक्तजनों का कल्याण हो सका तो यह प्रयत्न सफल होगा।

निवेदकः—

श्रीकृष्णजन्माष्टमी } **बैजनाथ प्रसाद यादव,**
व्यवस्थापक 'शम्भुधाम' काशी।

आचार्य जी की अन्य धार्मिक पुस्तकें—

१—गायत्रीभाष्यम् (हिन्दी टीका सहित)
२—श्रीमद्भागवतशास्त्रार्थकला (भागवतशङ्कासमाधान हिन्दी)
३—श्रेष्ठ जीवन (अमूल्य पठनीय)
४—स्त्रीसन्ध्या (स्त्रियों का कर्तव्य)
५—उपदेशसुधानिधि (अमूल्य पाठसामग्री)

पत्रव्यवहार का सङ्केत—

मैनेजर—

शास्त्रार्थमहाविद्यालय

३।३५ मीरघाट,

काशी।

अथ गोपीगीतम्

भाषाटीकासहितम्

—❀○❀—

[भा० द० पू० ३१ अध्याय]

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

अर्थः—गोपियाँ रो रो कर कह रही हैं कि हे प्रियतम ! तुम्हारे जन्म से व्रज की मर्यादा बहुत बढ़ी है क्योंकि श्रीमहालक्ष्मी आपके कारणही सर्वदा व्रजवासिनी होगयी हैं, हम सभी आपकी दासियाँ चारो तरफ आपको ही तलाश कर रही हैं, आपके दर्शन की ही प्रतीक्षा में जीवित रहनेवाली हम दासियों को कृपा कर दर्शन दीजिए ॥१॥

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥२॥

अर्थः— हे प्रेम के देवता ! तुम्हारे नेत्रों ने मुझे घायल कर दिया है, शरत्काल के जलाशय में उत्पन्न होनेवाले कमलों की सुन्दर कर्णिका की शोभा को हर लेनेवाली वह तुम्हारी आँखें हमें मार रही हैं। हम सभी बिना पैसे की तुम्हारी दासियाँ हैं, हे वर देनेवाले ! इस तरह हमें मृत्युतुल्य कष्ट देते हुए क्या तुम्हें हत्या का दोष नहीं लगेगा ? ॥२॥

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद् वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

अर्थः—हे प्रभो ! आपने विषैले जल से, अघासुर से, आँधी पानी से, वज्रपात से, दावाग्नि से, वृषभासुर से, व्योमासुर से तथा सभी प्रकार के भयों से हमारी रक्षा किया है तो इस समय दर्शनमात्र के काम से कामदेव के वाणों से मारी जाती हुई की रक्षा न करेंगे ? ॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख ! उदेयिवान्सात्वतां कुले ॥४॥

अर्थः—हे सखे ! हमें मालूम है कि आप केवल यशोदा माता के ही लाड़ले नहीं किन्तु समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। ब्रह्माजी की प्रार्थना से संसार की रक्षा के लिए आप यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं ॥४॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्तकामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥

अर्थः—हे यदुवंशशिरोमणे ! संसार के भय से भागे हुए शरणार्थियों को अभयदान देने वाले तथा श्री महालक्ष्मी का पाणिग्रहण करने वाले अपने उस दाहिने हाथ को हमारे शिर पर रख दो ॥५॥

व्रजजनार्तिहन् वीरयोषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करी स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥

अर्थः—हे व्रजवासियों के दुःखों को हरने वाले वीर ! तुम कहाँ जाकर छिप गए ? तुम्हें भागने की तो कोई आवश्यकता ही न थी, हम तो तुम्हारी मन्द मुसकान से ही परेशान हो गई थीं, कृपया हम दासियों को अपने श्रीमुखकमल का दर्शन कराओ ॥६॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥ ७ ॥

अर्थः—प्राणनाथ ! जो तुम्हारे चरणकमल शरणागतों के पापों को

नष्ट कर देते तथा श्रीमहालक्ष्मी जी सदैव जिन्हें पकड़े रहती हैं, वे ही हम पर कृपा कर गो पशुओं के पीछे पीछे दौड़ते, साँप के ऊपर भी निर्भय चढ़ जाते, कृपया उन चरण कमलों को मेरी छाती पर रख कर जलते हुए हृदय को शान्त करें ॥७॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८ ॥

अर्थः—हे कमलनयन ! जिसके एक एक अक्षर से पण्डित लोग भी मुग्ध हो जाते हैं ऐसी तुम्हारी दिव्य वाणी पर हम भी मुग्ध हैं, कृपया हम दासियों को अपने अधरामृत पान से जीवित कर दो ॥८॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥

अर्थः—तुम्हारी कथा रूपी अमृत विरहियों का जीवन है, ब्रह्मा आदि ने उसकी प्रशंसा की है, पापनाशक, श्रवणमात्र से मङ्गल देने वाली परम सुन्दर उस कथा को जो लोग गाते हैं वसुधा में वे नर धन्य हैं। केवल उसी के कारण अब भी हम जीवित हैं ॥९॥

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनःक्षोभयन्ति हि ॥१०॥

अर्थः—हे छल से प्रेम करने वाले ! तुम्हारी मधुर मुसकान, प्रेम भरी निगाहें, केवल ध्यान से भी मङ्गल देने वाला विहार तथा हृदय-स्पर्शी एकान्त की वह ठिठोलियाँ मन को चञ्चल बना हमें लाचार कर दे रही हैं ॥१०॥

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् ।
घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥१२॥

अर्थः—हे प्राणेश ! जब तुम व्रज से गौ चराते हुए वन की ओर जाते हो तो यह सोचकर कि तुम्हारे चरणकमलों में काँटे न घुस जायँ हमारा मन बेचैन हो उठता है। हे वीर ! जब तुम प्रतिदिन शाम को लौटते हो तो अपने उस मुखकमल जिस पर कि घुघराले केश लटक रहे हैं, गौओं की खुर की धूल उड़कर भर गई है दिखलाते हो, इन बातों के स्मरण से काम द्वारा हमारा हृदय अधिक दुःखी कर रहे हो। क्या यह अच्छी बात है ? ॥११-१२॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

अर्थः— हे दुःखों के नाश करने वाले भगवन् ! हे रमण ! अपने उस चरणकमल को हमारी छाती पर रखिये जो कि शरणागतों का मनोरथ पूर्ण करता, ब्रह्मा से पूजित, पृथ्वी का भूषण, कल्याणकारक है तथा आपत्ति काल में जिसका लोग ध्यान करते हैं ॥१३॥

सुरतवर्द्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर ! नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥

अर्थः—हे वीर ! तुम्हारा अधरामृत संभोग सुख को बढ़ाने वाला, समस्त शोकों का नाशक, मनुष्य की सभी आसक्तियों को भुला देने वाला तथा सुरीली बांसुरी से चुम्बित है। कृपया वही हमें पान करायें।

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥१५॥

अर्थः—जीवनधन ! जब तुम दिन में जंगल चले जाते हो उस

समय तुम्हारे दर्शन के बिना एक क्षण भी युग के समान बीतता है, जब शामको लौटते हो तो तुम्हारे घुघराले केशों से युक्त उस मुख कमल को हम देखती ही रह जाती हैं, उस समय तो टकटकी लगाकर देखने वालों को पलक गिरना भी बुरा लगता है, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा पर भी खीझ आती है कि उन्होंने उन्हें बनाकर अपनी मूर्खता ही की है ॥१५॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलंघ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

अर्थः—हे अच्युत ! अपने पति पुत्र भाई बन्धु सभी को छोड़कर हम तुम्हारे पास आई, तुम्हारी संगीतमाधुरी पर लुब्ध हैं, हे धूर्त ! हम तुम्हारी चालें जानती हैं, भला इस तरह रात में आई हुई स्त्रियों को तुम्हारे अतिरिक्त कोई छोड़ सकता है ? ॥१६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

अर्थः—कामदेव को तेज करने वाली तुम्हारी एकान्त की ठिठोलियाँ, प्रेम भरी चितवन से युक्त मुसकान और लक्ष्मी के निवासस्थान भूत शोभायमान चौड़े वक्षःस्थल (छाती) को देखकर ही हम अपने में नहीं, हमारा मन हमें व्याकुल किए जा रहा है ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

अर्थः—हे प्यारे ! तुम्हारा अवतार तो व्रजवासियों के कष्ट निवारण तथा विश्व के कल्याण के लिए हुआ है । अतः मन के मैल को छोड़ अपनी वह दवा दीजिए जिससे हमारे हृदय का रोग दूर हो जाय । हम तो तुम्हारी हैं अतः तुम्हारी ही स्पृहा (मिलने की इच्छा) में मन लगा हुआ है ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु,
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

अर्थः—भगवन् ! आप के चरण-कमल तो बहुत ही कोमल हैं, हमतो उनकी कोमलता देख अपनी कड़ी छाती पर उन्हें धीरे धीरे ही सँभालकर रख सकेंगी । तुमतो उन्हीं चरणों से जंगल झाड़ में घूम रहे हो फिर भी तीखे काँटे कुश उसमें क्यों नहीं गड़ जाते ? यह सब विचारकर हे जीवननाथ ! हमारी बुद्धि चकरा जाती है ।

इस प्रकार इन श्लोकों का केवल मूलार्थ लिखा गया है । वैसे तो इन के एक एक अक्षरों के अलग २ अथ हो सकते हैं ।

अथ भगवदुक्तचतुःश्लोकिभागवतम् ।

[श्रीमद्भा० स्क० २-अ० ९-श्लो० ३० से ३४ तक]

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीभगवान् विष्णुजी सृष्टिकर्त्ता श्री ब्रह्माजी की प्रार्थना पर कहते हैं कि हे ब्रह्माजी ! मेरा जो शास्त्रीय ज्ञान है वह परमगुह्य एवं अनुभव से युक्त है, उसके भक्तियुक्त साधन को रहस्य सहित तथा अङ्गों सहित सुनो मैं संक्षेप से कहूँगा ॥१॥

भागवतम् –

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ १ ॥

अर्थः—मैं अपने स्वरूप से जिस तरह का जैसी सत्ता से युक्त हूँ, एवं मेरे जो रूप, गुण तथा कर्म हैं उनका यथार्थ तत्त्वज्ञान मेरी कृपा से तुम्हें प्राप्त होगा ॥१॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

अर्थः— सृष्टि के पूर्व मैं ही था कोई दूसरी वस्तु न थी । स्थूल तथा सूक्ष्म का कारण प्रकृति रूप भी मैं ही था क्योंकि अन्तर्मुखी प्रकृति मुझमें ही लीन थी, मैं उस समय कुछ न करता हुआ चुपचाप बैठा था, सृष्टि के बाद भी मैं ही हूँ , यह दीखनेवाला विश्व भी मैं ही हूँ, प्रलय के बाद जो कुछ बच जाता है वह भी मैं ही हूँ, सारांश यह कि अनादि अनन्त तथा अद्वितीय होने के कारण मैं बिलकुल परिपूर्ण रूप हूँ ॥२॥

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥ ३ ॥

अर्थः—चन्द्रमा के एक होने परभी कभी कभी आँखों की कमजोरी से या रोग से जैसे अनेक चन्द्रमा दिखाई पड़ने लगते हैं वैसे ही मेरी माया के कारण ही अपने अधिष्ठानभूत आत्मा में वास्तविक अर्थों के बिना भी उनकी प्रतीति होने लगती है। जैसे ग्रहों के मध्य में विराजमान भी राहु दिखाई नहीं देता वैसेही सद्रूप से अवस्थित भी आत्मा इसी माया के कारण नहीं दिखाई देता ॥३॥

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ४ ॥

अर्थः—जैसे सृष्टि के अनन्तर पदार्थों में महाभूत प्रविष्ट हैं क्योंकि वे उपलक्षित होते हैं, अथवा यह कहिये कि उनमें वे पहले से ही विद्यमान रहते हैं वैसेही सांसारिक जीवों में मैं रहता भी हूँ नहीं भी रहता।

बस संसार में तत्व के जानने की इच्छा रखनेवालों को इतना ही समझना चाहिए। ठीक उसी बात को श्रीगीताशास्त्र में भी भगवान् ने बतलाया है, इसी के आधार पर श्रीवेदव्यास जी ने ब्रह्मसूत्र वेदान्तशास्त्र को भी बनाया है। अधिक क्या सभी दर्शनों तथा उपनिषदों का यही सारांश है। भक्तजनों को केवल इन्हीं ४ श्लोकों का ध्यानपूर्वक पाठ व मनन करने से सम्पूर्ण भागवत के पाठ का फल प्राप्त होता है। इसी लिए विचारशील ज्ञानी लोगों ने इसका नाम चतुःश्लोकी भागवत रक्खा है।



अमृत-उपदेश

१—जब अवकाश मिले ईश्वरस्मरण और पराये हित की चिन्ता करना ।

२—तुमसे अगर किसी का लाभ नहीं तो तुमसे बबूल के काँटे भी अच्छे, जिन्हें ऊँट बकरी खाकर अपना पेट पाल लेते हैं ।

३—अशुभ कर्म करने के पहिले उसका फल सोच लो ।

४—अगर कोई मनुष्य तुमको बुरा कहकर प्रसन्न रहता है तो तू विचार कर ले कि लोग सैकड़ों रूपये खर्च करके दूसरे को प्रसन्न कर पाते हैं तू मुफ्त में ही उसे प्रसन्न कर पारहे हो ।

५—परमेश्वर की प्राप्ति की इच्छा समस्त लोक साम्राज्य की भी इच्छा से अच्छी तथा सस्ती है ।

६—जगत् के सब जीवों को प्रसन्न रखने की चिन्ता न कर, बल्कि अपने मन से किसी का अनिष्ट न सोच ।

७—सन्तोष की सम्पत्ति से जो आनन्द तू उठायेगा उसके बराबर बड़ा बादशाह नहीं ।

८—भोगों की तृष्णा तुझे घर-घर दौड़ायेगी तथा दीन हीन बनायेगी अतः उसे छोड़ ।

९--संसार रूप बाग में आया है तो कोई शुभकर्म का वृक्ष लगा जा, जिसके फल से आगे जन्म जन्मान्तर तक सन्तुष्ट रहे ।

१०--जब खाना केवल पेट भरने ही के लिये है तो विचारशील के लिये चने ही बादाम हैं ।

११--खाते खाते दाँत घिस गये फिर भी तृष्णा न गई । फिर क्यों नहीं उसे छोड़ता ।

१२--सारे भोग एक तरफ सन्तोष का टुकड़ा एक तरफ ।

१३--पुरुषों में अपनी बात की पाबन्दी, स्त्रियों में लज्जा, फलों में मिठास; साधुओं में वैराग्य बहुत कम रह गया है यही दुःखद है ।

१४--संसार नित्य ही गिरगिट की तरह रङ्ग बदलता है तो तुम इस पर विश्वास क्यों करते हो ?

१५--जब स्वास का क्षणमात्र का भी भरोसा नहीं तो इस पर इतना गर्व क्यों ?

१६--जो मुक्ति चाहता है तो प्रेम और ज्ञान की आग उत्पन्न कर।

१७--ईश्वर की याद में प्रेम की एक आँसू भी करोड़ों रत्नों से कीमती, पर संसार की याद में बिलकुल व्यर्थ।

१८--दुःख में घबराना नहीं।

१९--सुख में भी हरिचिन्तन न छोड़ना।

२०--मित्रता करता है तो कर श्रेष्ठ पुरुषों से, शत्रुता करता है तो कर अहङ्कार से।

२१--जो मन के विकार नहीं गये तो वनका जाना व्यर्थ। यदि मन के विकार दूर हो गये तो घर वन सब बराबर है।

२२--जब किसी पुण्य कर्म वा भजन का घमण्ड होवे तो पापों की गठरी भी अपनी देख ले।

२३--सदा हरिस्मरण से पाप न होंगे।

२४--जो अपने मन का दास है वह अपना खुद शत्रु है तथा ईश्वर के मार्ग का अधिकारी नहीं।

२५--जब शरीर ही तेरा नहीं तो जगत् में और क्या तेरा है ?

२६--सत्सङ्ग, विवेक, भजन, शुभ गुण जैसी सम्पत्तियों का संग्रह कर जिनमें चोर डाकू का डर नहीं।

२७--एक ही लुटेरा भयङ्कर हो जाता है तेरे पीछे तो काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या आदि झुण्ड के झुण्ड लगे हैं। इनसे बचने के लिये सत्सङ्ग रूपी किले में भागो।

२८--जो कुछ शुभ कर्म करना है आज ही उसे कर लो; कौन जाने कल तू उसे करने लायक रहे या न रहे।

२९--अपने गन्दे सङ्कल्पों को छोड़कर ही अच्छा कहला सकते हो।

[इससे अधिक 'श्रेष्ठ-जीवन' में देखें]

शीघ्र छप रही है   भक्तों के अनुराग पर

प्राणिमात्र के सङ्कलन योग्य

उपदेशसुधानिधि

[ले०—आचार्य श्रीराजनारायणशास्त्री शुक्ल महोदय, शास्त्रार्थ-महाविद्यालय, मीरघाट, काशी]

इस पुस्तिका में प्रायः सभी देवताओं की स्तुतियाँ तथा उनके हिंदी में अर्थ लिखे गये हैं। दशावतारस्तोत्र, श्रीरघुनाथविग्रह वर्णन, श्रीगुरुदेवस्तुति इसके मुख्य अङ्ग हैं। मानसपूजा के प्रकार तथा नीति शास्त्रों के उपदेशप्रद अनेक श्लोकों का भावार्थ सहित उद्धरण भी अतीव मोहक है। इस पुस्तिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें श्रीमद्भागवतोक्त श्रीनारायणकवच, गजेन्द्रमोक्ष, वेदस्तुति तथा वेणुगीत आनुपूर्वी पाठ सहित रखे गए हैं, जिनका माहात्म्यसहित भावार्थ भी भक्तजनों की मनोहर पाठसामग्री है। उत्तम उपदेशों तथा ज्ञान से भरे कुछ हिन्दी के सरल भजन तथा दोहे भी सोने में सुगन्ध की तरह बैठाए गए हैं। इस पुस्तिका के पूर्णपाठ से मनुष्य अधिक ज्ञान प्राप्त कर संसार के माया बन्धनों से छूट पाने का मार्ग सोच सकता है इसमें तनिक सन्देह नहीं। इसका भी प्रकाशन धर्मार्थ ही अमूल्य किया जा रहा है।

सर्वविध पुस्तक प्राप्तिस्थान—

मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स

कचौड़ीगली, काशी।